वादविचार

प्रश्नोत्तर रूप से और खण्डन-मण्डन रूप से चर्चा दो प्रकार की है। खण्डन-मण्डन रूप चर्चा-अर्थ में सम्भाषा, कथा, वाद, आदि शब्दों का प्रयोग देखा जाता है। सम्भाषा शब्द चरक आदि वैद्यकीय ग्रन्थों में प्रसिद्ध है, जब कि कथा शब्द न्याय परम्परा में प्रसिद्ध है। वैद्यक परम्परा में सम्भाषा के सन्धायसम्भाषा और विगृह्यसम्भाषा ऐसे दो भेद किए हैं (चरकसं० पृ० २६३); जब कि न्याय परम्परा ने कथा के वाद, जल्प, वितण्डा ये तीन भेद किए हैं (न्यायवा० पृ० १४६)। वैद्यक परम्परा की सन्धायसम्भाषा ही न्याय परम्परा की वाद कथा है। क्योंकि वैद्यक परम्परा में सन्धायसम्भाषा के जो और जैसे अधिकारी बताए गए हैं (चरकसं० पृ० २६३) वे और वैसे ही अधिकारी वाद कथा के न्याय परम्परा (न्यायसू० ४. २. ४८) में माने गए हैं। सन्धायसम्भाषा और वाद कथा का प्रयोजन भी दोनों परम्पराओं में एक ही—तत्त्वनिर्णय है। वैद्यक परम्परा जिस चर्चा को विगृह्यसम्भाषा कहती है उसी को न्याय परम्परा जल्प और वितण्ड कथा कहती है। चरक ने विगृह्यसम्भाषा ऐसा सामान्य नाम रखकर फिर उसी के जल्प और वितण्डा ये दो भेद बताए हैं—(पृ० २६५)। न्याय परम्परा में इन दो भेदों के वास्ते 'विगृह्यसम्भाषा' शब्द प्रसिद्ध नहीं है, पर उसमें उक्त दोनों भेद विजिगीषुकथा शब्द से व्यवहृत होते हैं (न्यायवा० पृ० १४६)। अतएव वैद्यक परम्परा का 'विगृह्यसम्भाषा' और न्याय परम्परा का 'विजिगीषुकथा' ये दो शब्द बिलकुल समानार्थक हैं। न्याय परम्परा में यद्यपि विगृह्यसम्भाषा इस शब्द का खास व्यवहार नहीं है, तथापि उसका प्रतिबिम्बप्राय 'विगृह्यकथन' शब्द मूल न्यायसूत्र (४. २. ५१) में ही प्रयुक्त है। इस शाब्दिक और आर्थिक संक्षिप्त तुलना से इस बात में कोई सन्देह नहीं रहता कि मूल में न्याय और वैद्यक दोनों परम्पराएँ एक ही विचार के दो भिन्न प्रवाह मात्र हैं। बौद्ध परम्परा में खास तौर से कथा अर्थ में वाद शब्द के प्रयोग की प्रधानता रही है। कथा के वाद, जल्प आदि अवान्तर भेदों के वास्ते उस परम्परा में प्रायः सद्-धर्मवाद, विवाद आदि शब्द प्रयुक्त किये गए हैं। जैन परम्परा में कथा अर्थ में क्वचित्[1] जल्प शब्द का प्रयोग है पर सामान्य

---

१ 'किं तत् जल्पं विदुः ? इत्याह-समर्थवचनम्'।-सिद्धिवि० टी० पृ० २५४ B।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप से सर्वत्र उस अर्थ में वाद शब्द का ही प्रयोग देखा जाता है। जैन परम्परा कथा के जल्प और वितण्डा दो प्रकारों को प्रयोगयोग्य नहीं मानती। अतएव उसके मत से वाद शब्द का वही अर्थ है जो वैद्यक परम्परा में सन्धायसम्भाषा शब्द का और न्याय परम्परा में वादकथा का है। बौद्ध तार्किकों ने भी आगे जाकर जल्प और वितण्डा कथा को त्याज्य बतलाकर केवल वादकथा को ही कर्त्तव्य रूप कहा है। अतएव इस पिछली बौद्ध मान्यता और जैन परम्परा के बीच वाद शब्द के अर्थ में कोई अन्तर नहीं रहता।

वैद्यकीय सन्धायसम्भाषा के अधिकारी को बतलाते हुए चरक ने महत्त्व का एक अनसूयक विशेषण दिया है, जिसका अर्थ है कि वह अधिकारी असूया-दोषमुक्त हो। अक्षपाद ने भी वादकथा के अधिकारियों के वर्णन में 'अनुसूयि' विशेषण दिया है। इससे सिद्ध है कि चरक और अक्षपाद दोनों के मत से वादकथा के अधिकारियों में कोई अन्तर नहीं। इसी भाव को पिछले नैयायिकों ने वाद का लक्षण करते हुए एक ही शब्द में व्यक्त कर दिया है कि—तत्त्वबुभुत्सुकथा वाद है (केशव० तर्कभाषा पृ० १२६)। चरक के कथनानुसार विगृह्यसम्भाषा के अधिकारी जय-पराजयेच्छु और छलबलसम्पन्न सिद्ध होते हैं, न्यायपरम्परा के अनुसार जल्प-वितण्डा के वैसे ही अधिकारी माने जाते हैं। इसी भाव को नैयायिक 'विजिगीषुकथा—जल्प-वितण्डा' इस लक्षणवाक्य से व्यक्त करते हैं। वाद के अधिकारी तत्त्वबुभुत्सु किस-किस गुण से युक्त होने चाहिए और वे किस तरह अपना वाद चलाएँ इसका बहुत ही मनोहर व समान वर्णन चरक तथा न्यायभाष्य आदि में है।

न्याय परम्परा में जल्पवितण्डा कथा करनेवाले को विजिगीषु माना है जैसा कि चरक ने; पर वैसी कथा करते समय वह विजिगीषु प्रतिवादी और अपने बीच किन-किन गुण-दोषों की तुलना करे, अपने श्रेष्ठ, कनिष्ठ या बराबरी-वाले प्रतिवादी से किस-किस प्रकार की सभा और कैसे सभ्यों के बीच किस-किस प्रकार का बर्त्ताव करे, प्रतिवादी से आटोप के साथ कैसे बोले, कभी कैसा झिड़के इत्यादि बातों का जैसा विस्तृत व आँखोंदेखा वर्णन चरक (पृ० २६४) ने किया है वैसा न्याय परम्परा के ग्रन्थों में नहीं है। चरक के इस वर्णन से कुछ मिलता-जुलता वर्णन जैनाचार्य सिद्धसेन ने अपनी एक वादोपनिषद्द्वात्रिंशिका में किया है, जिसे चरक के वर्णन के साथ पढ़ना चाहिए। बौद्ध परम्परा जब तक न्याय परम्परा की तरह जल्पकथा को भी मानती रही तब तक उसके अनुसार भी वाद के अधिकारी तत्त्वबुभुत्सु और जल्पादि के अधिकारी विजिगीषु ही फलित होते हैं, जैसा कि न्यायपरम्परा में। उस प्राचीन समय का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बौद्ध विजिगीषु, नैयायिक विजिगीषु से भिन्न प्रकार का सम्भव नहीं, पर जब से बौद्ध परम्परा में छल आदि के प्रयोग का निषेध होने के कारण जल्पकथा नाम-शेष हो गई और वादकथा ही अवशिष्ट रही तब से उसमें अधिकारिद्वैविध्य का प्रश्न ही नहीं रहा, जैसा कि जैन परम्परा में।

जैन परम्परा के अनुसार चतुरङ्गवाद के अधिकारी विजिगीषु हैं। पर न्याय-वैद्यक-परम्परासम्मत विजिगीषु और जैनपरम्परासम्मत विजिगीषु के अर्थ में बड़ा अन्तर है। क्योंकि न्याय-वैद्यक परम्परा के अनुसार विजिगीषु वही है जो न्याय से या अन्याय से, छल आदि का प्रयोग करके भी प्रतिवादी को परास्त करना चाहे, जब कि जैनपरम्परा विजिगीषु उसी को मानती है जो अपने पक्ष की सिद्धि करना चाहे, पर न्याय से; अन्याय से छलादि का प्रयोग करके कभी नहीं। इस दृष्टि से जैनपरम्परासम्मत विजिगीषु असूयावान् होकर भी न्यायमार्ग से ही अपना पक्ष सिद्ध करने का इच्छुक होने से करीब-करीब न्याय-परम्परासम्मत तत्त्वबुभुत्सु की कोटि का हो जाता है। जैन परम्परा ने विजय का अर्थ—अपने पक्ष की न्याय्य सिद्धि ही किया है, न्याय-वैद्यक परम्परा की तरह, किसी भी तरह से प्रतिवादी को मूक करना नहीं।

जैन परम्परा के प्राथमिक तार्किकों[1] ने, जो विजिगीषु नहीं हैं ऐसे वीतराग व्यक्तियों का भी वाद माना है। पर वह वाद चतुरङ्ग नहीं है। क्योंकि उसके अधिकारी भले ही पक्ष-प्रतिपक्ष लेकर प्रवृत्त हों पर वे असूयामुक्त होने के कारण किसी सभापति या सभ्यों के शासन की अपेक्षा नहीं रखते। वे आपस में ही तत्त्वबोध का विनिमय या स्वीकार कर लेते हैं। जैन परम्परा के विजिगीषु में और उसके पूर्वोक्त तत्त्वनिर्णिनीषु में अन्तर इतना ही है कि विजिगीषु न्यायमार्गसे चलनेवाले होने पर भी ऐसे असूयामुक्त नहीं होते जिससे वे बिना किसी के शासन के किसी बात को स्वतः मान लें जब कि तत्त्वनिर्णिनीषु न्याय-मार्ग से चलनेवाले होने के अलावा तत्त्वनिर्णय के स्वीकार में अन्य के शासन से निरपेक्ष होते हैं। इस प्रकार चतुरङ्गवाद के वादी प्रतिवादी दोनों विजिगीषु होने की पूर्व प्रथा रही[2], इसमें वादि देवसूरि ने (प्रमाणन० ८. १२-१४)

---

१ 'परार्थाधिगमस्तत्रानुद्धवद्रागगोचरः। जिगीषुगोचरश्चेति द्विधा शुद्धधियो विदुः॥ सत्यवाग्भिः विधातव्यः प्रथमस्तत्त्ववेदिभिः। यथाकथञ्चिदित्येष चतुरङ्गो न सम्मतः॥'—तत्त्वार्थश्लो० पृ० २७७।

२ 'वादः सोऽयं जिगीषतोः।'—न्यायवि० २. २१२। 'समर्थवचनं वादः प्रकृतार्थप्रत्यायनपरं साभिसन्धं जिगीषतोरेकत्र साधनदूषणवचनं वादः।'—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थोड़ा विचारभेद प्रकट किया कि, एकमात्र विजिगीषु वादी या प्रतिवादी के होने पर भी चतुरङ्ग कथा का सम्भव है। उन्होंने यह विचारभेद सम्भवतः अकलङ्क या विद्यानन्द आदि पूर्ववर्ती तार्किकों के सामने रखा है। इस विषय में आचार्य हेमचन्द्र का मानना अकलङ्क और विद्यानन्द के अनुसार ही जान पड़ता है—प्र० मी० पृ० ६३।

ब्राह्मण बौद्ध, और जैन सभी परम्पराओं के अनुसार कथा का मुख्य प्रयोजन तत्त्वज्ञान की प्राप्ति या प्राप्त तत्त्वज्ञान की रक्षा ही है। साध्य में किसी का मतभेद न होने पर भी उसकी साधनप्रणाली में अन्तर अवश्य है, जो पहिले भी बताया जा चुका है। संक्षेप में वह अन्तर इतना ही है कि जैन और उत्तरवर्ती बौद्ध तार्किक छल, जाति आदि के प्रयोग को कभी उपादेय नहीं मानते।

वादी, प्रतिवादी, सभ्य और सभापति इन चारों अङ्गों के वर्णन में तीनों[1] परम्पराओं में कोई मतभेद नहीं है। आचार्य हेमचन्द्र ने जो चारों अङ्गों के स्वरूप का संक्षिप्त निदर्शन किया है वह पूर्ववर्ती ग्रन्थों का सार मात्र है।

जैन परम्परा ने जब छलादि के प्रयोग का निषेध ही किया तब उसके अनुसार जल्प या वितण्डा नामक कथा वाद से भिन्न कोई न रही। इस तत्त्व को जैन तार्किकों ने विस्तृत चर्चा के द्वारा सिद्ध किया। इस विषय का सबसे पुराना ग्रन्थ शायद कथात्रयभङ्ग हो, जिसका निर्देश सिद्धिविनिश्चयटीका (पृ० २८६ A) में है। उन्होंने अन्त में अपना मन्तव्य स्थिर किया कि—जल्प और वितण्डा नामक कोई वाद से भिन्न कथा ही नहीं, वह तो कथाभास मात्र है। इसी मन्तव्य के अनुसार आचार्य हेमचन्द्र ने भी अपनी चर्चा में बतलाया कि वाद से भिन्न कोई जल्प नामक कथान्तर नहीं, जो ग्राह्य हो।

ई० १९३९] [प्रमाण मीमांसा

प्रमाणसं० परि० ६। 'सिद्धो जिगीषतो वादः चतुरङ्गस्तथा सति।'—तत्त्वार्थश्लो० पृ० २७७।

१ देखो—चरकसं० पृ० २६४। न्यायप्र० पृ० १४। तत्त्वार्थश्लो० पृ० २८०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org